

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 31: मानव गर्भ की विकास-अवस्थाएँ

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



विधाता द्वारा निर्देशित और अपने ही पूर्व कर्मों के ठीक भार से गढ़ा हुआ जीव पिता के बीज में विश्राम पाता है और माता के गर्भ में वहन किया जाता है, वहाँ वही शरीर पाने के लिए जो उसके कर्म ने पहले ही अर्जित कर लिया है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

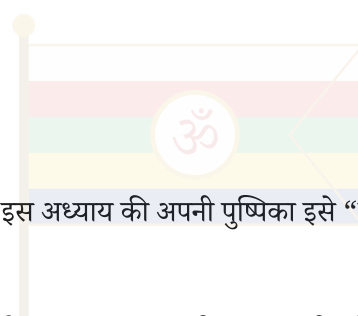
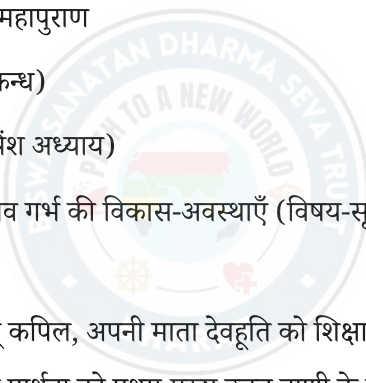
श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। हम कपिल-गीता के हृदय में आगे बढ़ रहे हैं — वह शिक्षा जो भगवान् कपिल सरस्वती नदी के तट पर स्थित वन-आश्रम में अपनी माता देवहूति को दे रहे हैं। पिछला अध्याय एक ऐसे जीव के साथ समाप्त हुआ था जो नरक की यातनाओं तथा निम्नतम पशु-योनियों से शुद्ध होकर पुनः मनुष्य-जन्म तक

पहुँचा था। अध्याय 31 अब उसी द्वार को खोलकर उसमें पूर्णतः प्रवेश करता है: यह गर्भाधान का, गर्भ में शरीर की माह-दर-माह वृद्धि का, और — इसके भावनात्मक तथा आध्यात्मिक केन्द्र में — उस विस्मृत प्रार्थना का श्रीमद्भागवत का अपना विवरण है, जिसे बन्दी जीव कभी प्रार्थना करना जानता था, जब स्मृति और दुःख ने, जन्म से पूर्व के उस संक्षिप्त काल के लिए, उसे ज्ञानवान् बना दिया था। यह कपिल-गीता के सम्पूर्ण अध्यायों में सर्वाधिक उद्धृत, सर्वाधिक कोमल, और सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण अध्यायों में से एक है, और आगे इसे ठीक वैसे ही प्रस्तुत किया गया है जैसे गीता प्रेस का मूल स्रोत इसे प्रस्तुत करता है: गम्भीर, श्रद्धापूर्ण शिक्षा के रूप में, न कि शरीर-रचना विज्ञान के रूप में और न ही किसी तमाशे के रूप में।

आरम्भ से पूर्व एक टिप्पणी, उसी भावना में जो स्वयं स्रोत अपने पाठक से अपेक्षा करता है। यह अध्याय गर्भाधान, जन्म, शैशव तथा वासना के संकटों का वर्णन उस सीधेपन से करता है जिसकी अपेक्षा एक आधुनिक पाठक भक्ति-ग्रन्थ से शायद न करे। कपिल कोई चिकित्सा-ग्रन्थ नहीं लिख रहे; वे प्रत्येक देहधारी जीव की स्थिति का निदान कर रहे हैं, गर्भ को उस स्थिति के स्पष्टतम दर्पण के रूप में प्रयुक्त करते हुए — बद्ध, विस्मृत, और तथापि, अपनी गहनतम गहराई में, ईश्वर की ओर मुड़ने में सक्षम। इस अध्याय का सबसे प्रसिद्ध अंश, गर्भ के भीतर से जीव की अपनी प्रार्थना, धीरे-धीरे और उस गम्भीरता के साथ पढ़े जाने योग्य है जो दस माह की अटूट स्मृति और असहायता उसमें प्रेरित करती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 31 (एकत्रिंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: मानव गर्भ की विकास-अवस्थाएँ (विषय-सूची अनुसार); इस अध्याय की अपनी पुष्पिका इसे “जीव की नियति” नाम देती है
- मुख्य वक्ता: भगवान् कपिल, अपनी माता देवहूति को शिक्षा देना जारी रखते हुए — एक आन्तरिक कथा-परिवर्तन के साथ जिसमें कपिल गर्भ में बन्दी जीव की प्रार्थना को प्रथम-पुरुष उद्धृत वाणी के रूप में प्रस्तुत करते हैं (श्लोक 12-21)
- मुख्य श्रोता: देवहूति
- मुख्य स्थान: सरस्वती नदी के तट पर ऋषि कर्दम का आश्रम (कपिल-गीता के पूर्ववर्ती अध्यायों के समान ही स्थान)
- मुख्य विषय-वस्तु: पुरुष तथा स्त्री के जनन-द्रव्यों के मिलन द्वारा गर्भ में जीव का प्रवेश; भ्रूण के शरीर का माह-दर-माह निर्माण; बद्ध, बढ़ते हुए भ्रूण के दुःख; सैकड़ों पूर्वजन्मों की स्मृति का जागरण तथा मुक्ति एवं आत्मज्ञान के लिए जीव की अपनी विस्मृत प्रार्थना; जन्म का आघात, जो उस कठिनाई से अर्जित ज्ञान को मिटा देता है; शैशव, बाल्यावस्था तथा यौवन के दुःख; विपरीत लिंग के प्रति आसक्ति का संकट, जो समस्त आसक्तियों में सर्वाधिक बन्धनकारी है; और जन्म तथा मृत्यु के वास्तविक स्वरूप एवं वैराग्यपूर्ण जीवन के मार्ग पर अध्याय की समापन-शिक्षा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 31, श्लोक 1-48
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



गर्भ में जीव का प्रवेश

कपिल अपनी शिक्षा को ठीक वहीं से पुनः आरम्भ करते हैं जहाँ अध्याय 30 समाप्त हुआ था — एक ऐसे जीव के साथ, जो नरकों में तथा निम्नतम पशु-योनियों में अपने कष्ट-भोग से शुद्ध होकर, एक बार पुनः मानव-शरीर की देहरी पर खड़ा है:

भगवान् ने आगे कहा: कर्म के बल से, विधाता के निर्देशानुसार, जीव (जिसे मनुष्य के रूप में जन्म लेना है) शरीर-निर्माण के लिए पुरुष के वीर्यकण के आश्रय से स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है। (श्लोक 1)

श्रीभगवानुवाच ।

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ।

स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ १ ॥

śrī-bhagavān uvāca karmaṇā daiva-netreṇa jantur dehopapattaye striyāḥ praviṣṭa udaram puṁso retaḥ-kaṇāśrayaḥ

अर्थ: यहाँ कपिल देवहूति के अनकहे प्रश्न का उत्तर मूल से देते हैं कि जीव को कौन-सा शरीर मिलेगा, यह किस प्रकार निश्चित होता है। यहाँ कुछ भी संयोग पर नहीं है — कर्मों का एक अदृश्य लेखा ही प्रवेश-बिन्दु तय करता है, और जीव पिता के वीर्यकण के माध्यम से माता के गर्भ में पहुँचकर ठीक वही शरीर पाता है जो उस लेखे ने पहले से निश्चित कर रखा है। (स्कन्ध 3, अध्याय 31, श्लोक 1)

कपिल के कथन में यहाँ कुछ भी संयोग पर नहीं छोड़ा गया है, न ही केवल जीव-विज्ञान पर। कर्म — जीव के अपने पूर्व कर्मों का संचित भार — ही वह द्वार चुनता है; विधाता उस यात्रा का निर्देशन करते हैं; शरीर स्वयं केवल वह पात्र है जिसे कर्म ने अर्जित किया है। यह अध्याय का आधारभूत कथन है, और इसके पश्चात् जो कुछ भी आता है — भ्रूण-विकास की हर अवस्था, दुःख की हर अवस्था, जीव के उदित होते और फिर विस्मृत होते ज्ञान की हर अवस्था — इसी एक आधार से प्रकट होता है: जन्म कोई दुर्घटना नहीं है। यह एक रखी हुई नियुक्ति है।



कर्म के बल से, विधाता के निर्देशानुसार, जीव शरीर-निर्माण के लिए पुरुष के वीर्यकण के आश्रय से स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है (श्लोक 1)।

माह-दर-माह: शरीर को वृद्धे

इसके पश्चात् पौराणिक साहित्य में कहीं भी मिलने वाले सबसे विस्तृत शारीरिक विवरणों में से एक आता है, और कपिल इसे उस शान्त, अविचलित सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करते हैं जैसे कोई ऐसी प्रक्रिया का वर्णन कर रहा हो जो सृष्टि के आरम्भ से अभिन्न रूप से दोहराई जाती रही हो:

एक रात्रि में यह अण्डाणु से मिलकर संगठित हो जाता है, तथा पाँच रात्रियों में यह बुलबुले के आकार में गोल हो जाता है। दस दिनों की अवधि में यह बेर के समान कठोर हो जाता है और बाद में यह माँस-पिण्ड अथवा अण्डे (अण्डज प्राणियों के मामले में) के आकार में विकसित हो जाता है। (श्लोक 2) एक महीने में सिर बनता है और दो महीनों के अन्त में हाथ, पैर तथा अन्य अंग आकार लेते हैं। तीसरे महीने के अन्त तक नाखून, शरीर के रोम, हड्डियाँ तथा त्वचा प्रकट होते हैं, साथ ही जननेन्द्रिय तथा शरीर के अन्य छिद्र (आँख, नासिका, कान, मुख तथा गुदा के) भी। (श्लोक 3) चार महीनों में शरीर के सात आवश्यक घटक (रस, रक्त, माँस, मेदा, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य) अस्तित्व में आते हैं; जबकि पाँचवें महीने के अन्त में भूख तथा प्यास की अनुभूति होने लगती है; छठे महीने में भ्रूण जरायु से घिर जाता है और उदर के दाहिने भाग में (अथवा यदि कन्या हो तो बाएँ भाग में) हिलना-डुलना आरम्भ कर देता है। (श्लोक 4)

बुलबुला, बेर, माँस-पिण्ड, सिर, अंग, छिद्र, शरीर के सात घटक, भूख, गति — यह सारा क्रम अपने वैज्ञानिक महत्त्व के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है, अपितु उस बात को स्थापित करने के लिए जिस पर शेष अध्याय पूर्णतः निर्भर करता है: यहाँ घटक-दर-घटक बनाया जा रहा शरीर स्वयं नहीं है। यह एक निर्माणाधीन पात्र मात्र है, जो प्रत्येक जन्म लेने वाले जीव के लिए ठीक उसी प्रकार बनाया जाता है, चाहे वह जीव अपने असंख्य पूर्वजन्मों में कोई भी रहा हो। नाखूनों, हड्डियों तथा छिद्रों की यह विस्तृत संरचना, कपिल के व्यापक तर्क में, ठीक वही जाल है जिसे इस अध्याय की केन्द्रीय प्रार्थना पार देखने की भीख माँगती है।



माह-दर-माह शरीर बनता है — सिर, अंग, छिद्र, सात आवश्यक घटक, भूख तथा गति — एक ऐसा पात्र जो प्रत्येक जीव के लिए उसी प्रकार निर्मित होता है, चाहे वह जीव अपने असंख्य पूर्वजन्मों में कोई भी रहा हो (श्लोक 2-4)।

गर्भ में दुःख

शरीर के निर्माण का वर्णन करने के पश्चात्, कपिल बिना किसी शमन के इस ओर मुड़ते हैं कि इस निर्माण का भीतर से अनुभव वास्तव में कैसा होता है:

माता द्वारा ग्रहण किए गए भोजन तथा पेय आदि से पोषण पाकर, भ्रूण बढ़ता है और उस घृणित पात्र में रहता है जो मल तथा मूत्र का, कृमियों की प्रजनन-भूमि है। (श्लोक 5) उदर के भीतर ही भूखे कृमियों द्वारा बार-बार सारे शरीर पर काटे जाने से, वह प्राणी अपनी कोमलता के कारण भीषण पीड़ा सहता है और क्षण-क्षण में मूर्च्छित हो जाता है। (श्लोक 6) यही नहीं, माता द्वारा सेवन किए गए कड़वे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे, खट्टे तथा अन्य ऐसे उत्तेजक पदार्थों से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होकर, भ्रूण अपने शरीर के हर भाग में पीड़ादायक अनुभूति का अनुभव करता है। (श्लोक 7) जरायु से घिरा हुआ तथा बाहर से आँतों से आवृत, वह उदर के एक ओर सिर को पेट की ओर मोड़े हुए तथा पीठ और गर्दन को (धनुष के समान) मोड़े हुए पड़ा रहता है। (श्लोक 8)

यह ध्यान देने योग्य है कि यह ग्रन्थ इस सामग्री का व्यवहार किस प्रकार करता है। इसमें वर्णन में कोई रस-लोलुपता नहीं है, प्रभाव के लिए कोई विलम्ब नहीं है — केवल वही सरल, लगभग वैज्ञानिक ईमानदारी है जो इस शृंखला ने कपिल-गीता के पूर्ववर्ती कठिन अध्यायों में भी देखी है। यहाँ जो बिन्दु निर्मित किया जा रहा है वह यह नहीं है कि “जीवन घृणित है”; अपितु यह है कि देहधारण का सर्वप्रथम अनुभव ही, किसी चुनाव से पूर्व, इस विशेष जीवन में कोई पाप किए बिना ही, पहले से बन्धन तथा असहायता का है। यही अध्याय के अगले तथा सर्वाधिक उल्लेखनीय मोड़ की भूमिका बाँधता है।

पिंजरे में पक्षी: स्मृति का जागरण

श्लोक 9 अध्याय के सबसे शान्त किन्तु सर्वाधिक हृदय-विदारक बिम्बों में से एक प्रस्तुत करता है, और यह वह कब्ज़ा है जिस पर आगे आने वाली सम्पूर्ण प्रार्थना निर्भर करती है:

पिंजरे में स्वतन्त्र रूप से न घूम सकने वाले पक्षी की भाँति अपने ही अंगों को हिलाने में असमर्थ, गर्भ में स्थित प्राणी की स्मृति विधाता की इच्छा से जाग उठती है और वह अपने सैकड़ों पूर्वजन्मों में किए गए कार्यों का स्मरण करता है तथा दीर्घ काल तक घुटन का अनुभव करता है। ऐसी परिस्थितियों में उसे कौन-सी मानसिक शान्ति प्राप्त हो सकती है? (श्लोक 9)

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ।

तत्र लब्धस्मृतिर्देवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ।

स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥ ९ ॥

akalpaḥ svāṅga-ceṣṭāyāṁ śakunta iva pañjare tatra labdha-smṛtir daivāt karma janma-śatodbhavam smaran dīrgham anucchvāsaṁ śarma kiṁ nāma vindate

अर्थ: कपिल का यह बिम्ब जान-बूझकर सटीक है: पिंजरे में बन्द पक्षी सलाखों के पार सब कुछ देख सकता है, पर अपनी ओर से कुछ भी हिला नहीं सकता — गर्भस्थ जीव की भी ठीक यही दशा है इस एक क्षण की स्पष्टता में, जो विधाता की देन है, प्रयास का फल नहीं, जब सैकड़ों भुला दिए गए जन्म अचानक पुनः दिखाई देने लगते हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 31, श्लोक 9)

यह गर्भस्थ जीव के बारे में अध्याय का सबसे महत्वपूर्ण कथन है: इस संक्षिप्त काल के लिए, जन्म द्वारा पुनः मिटाए जाने से पूर्व, जीव को सब कुछ स्मरण रहता है — हर जन्म जो उसने जिया, हर निर्णय जो उसने लिया, हर परिणाम जो उसने अर्जित किया। विडम्बना यह है कि यह देहधारी अवस्था में जीव की सर्वाधिक आध्यात्मिक स्पष्टता का क्षण है, और यह स्पष्टता ठीक इसलिए है क्योंकि वह पूर्णतः शक्तिहीन है, पिंजरे में बन्द पक्षी के समान, जो कुछ वह अब इतनी स्पष्टता से देख रहा है उस पर कार्य करने में असमर्थ। कपिल आगे कहते हैं:

भ्रूण, यद्यपि गर्भाधान के सातवें महीने से ही चेतना से सम्पन्न हो जाता है, प्रसव-पूर्व के सप्ताहों में भ्रूण को नीचे की ओर दबाने वाली वायु से इधर-उधर उछाला जाता है, और वह उसी उदर-गुहा में मल से उत्पन्न कृमि के समान एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकता। (श्लोक 10) सात घटकों से बने भौतिक शरीर से बाँधा हुआ, जो उसे बाँधने वाली कई रस्सियों के समान हैं, वह मानव-जीव, जो शरीर को अपना स्वयं का स्वरूप मानता है, अत्यन्त भयभीत रहता है (कि यह गर्भाधान की प्रक्रिया अन्य ऐसे जन्मों में पुनः दोहराई जाएगी), और जुड़े हुए हाथों से वह उस परमेश्वर से, जिसके द्वारा वह गर्भ में डाला गया, अत्यन्त पीड़ा-भरे स्वर में विनती तथा स्तुति करता है। (श्लोक 11)



पिंजरे में स्वतन्त्र रूप से न घूम सकने वाले पक्षी की भाँति अपने ही अंगों को हिलाने में असमर्थ, गर्भ में स्थित जीव की स्मृति जाग उठती है और वह सैकड़ों पूर्वजन्मों का स्मरण करता है — देहधारी अवस्था में उसकी सर्वाधिक आध्यात्मिक स्पष्टता का क्षण, तथा उसकी सर्वाधिक असहायता का भी (श्लोक 9)।

गर्भ में जीव की प्रार्थना

इसके पश्चात् जो आता है — श्लोक 12 से 21 तक — सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत में सर्वाधिक प्रिय तथा सर्वाधिक उद्धृत अंशों में से एक है: वह प्रार्थना जो बन्दी जीव, कपिल के अपने उद्धृत शब्दों में, गर्भ के अन्धकार से अर्पित करता है। इसे यहाँ पूर्ण रूप से तथा बिना किसी व्यवधान के पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि स्वयं स्रोत इसे प्रस्तुत करता है।

मानव-जीव कहता है: मैं उनके चरण-कमलों की शरण लेता हूँ, जो कभी पृथ्वी पर विचरे थे और समस्त भय से मुक्ति प्रदान करते हैं, उन परमेश्वर की, जो अपनी इच्छा से (समय-समय पर) उनकी शरण लेने वाले इस विश्व की रक्षा हेतु विविध रूप धारण करते हैं — और जिनके द्वारा मुझे ऐसी अवस्था में डाला गया है, जो मेरे दुष्ट स्वभाव के सर्वथा अनुरूप है। (श्लोक 12) मैं उनको नमन करता हूँ, जो इस गर्भ में इस मनो-भौतिक शरीर (स्थूल तत्त्वों, इन्द्रियों तथा मन से युक्त) के रूप में माया को धारण करके, पुण्य तथा पाप कर्मों से बद्ध प्रतीत होते हैं, और जिनका वास्तविक स्वरूप माया द्वारा आवृत है, किन्तु जो मेरे व्यथित हृदय पर पूर्णतः शुद्ध (माया से अकलुषित), अपरिवर्तनीय तथा अखण्ड

ज्ञान से सम्पन्न होकर प्रकट होते हैं। (श्लोक 13) यद्यपि वास्तव में देह-रहित हूँ, फिर भी मैं पाँच तत्त्वों से बने शरीर से आवृत, इन्द्रियों, गुणों (प्रकृति की अवस्थाओं), इन्द्रिय-विषयों तथा अहंकार से युक्त प्रतीत होता हूँ। अतः मैं उस सर्वज्ञ परम पुरुष की, प्रकृति (जड़) तथा पुरुष (चेतन) दोनों के नियन्ता की, आराधना करता हूँ, जिनकी महिमा ऐसे आवरणों (शरीर आदि) द्वारा कभी आच्छादित नहीं हो सकती। (श्लोक 14) भगवान् की माया के प्रभाव में अपने ही स्वरूप को भूलकर, देहधारी जीव संसार (जन्म-मरण) के उस मार्ग पर विचरण करता है — जो तीन गुणों से उत्पन्न कर्म की अनेक बेड़ियों से पटा हुआ है — अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सहते हुए। तो फिर उस परमेश्वर की कृपा के अतिरिक्त और किस उपाय से वह अपने वास्तविक स्वरूप को साकार करने की आशा कर सकता है? (श्लोक 15)

यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन्
सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्चमेण ।
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं
युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥ १५ ॥

yan-māyayoru-guṇa-karma-nibandhane 'smin sām̐sārike pathi caram̐s tad-abhiśrameṇa naṣṭa-smṛtiḥ punar ayaṁ pravṛṇīta lokam̐ yuktyā kayā mahad-anugraham antareṇa

अर्थ: सम्पूर्ण प्रार्थना इसी श्लोक पर टिकी है। जीव अभी-अभी स्वीकार कर चुका है कि अपने वास्तविक स्वरूप की अज्ञानता ही उसे तीनों गुणों के अधीन जन्म-दर-जन्म भटकाती रहती है — और अब वह वही आवश्यक निष्कर्ष निकालता है: कोई भी उपाय, कोई भी व्यक्तिगत प्रयास, इस विस्मृति को दूर नहीं कर सकता; केवल भगवान् की कृपा ही वह ज्ञान पुनः लौटा सकती है जिसे अज्ञान ने छीन लिया था। (स्कन्ध 3, अध्याय 31, श्लोक 15)

उस परमेश्वर के अतिरिक्त और किसने मुझे भूत, वर्तमान तथा भविष्य का यह ज्ञान प्रदान किया है? क्योंकि वे ही समस्त सजीव तथा निर्जीव प्राणियों में अन्तर्यामी के रूप में निवास करते हैं, जो स्वयं भगवान् की ही एक अंश-अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। अतः अपनी त्रिविध व्यथा को शान्त करने के लिए हम उन्हीं की आराधना करते हैं — हम, जो अपने कर्म के परिणामस्वरूप जीव की भूमिका निभा रहे हैं। (श्लोक 16)

दूसरे शरीर (माता के शरीर) के उदर के भीतर रक्त, मल तथा मूत्र के गड्ढे में गिरा हुआ, तथा (माता की) जठराग्नि से अपने शरीर को झुलसाया हुआ, यह देहधारी जीव (मेरा अपना स्वयं) अपने महीने गिनते हुए इससे निकलने के लिए व्याकुल है। हे प्रभु, यह अभागा जीव कब मुक्त होगा? (श्लोक 17) हे प्रभु, करुणा से परिपूर्ण होकर आपके अद्वितीय स्वरूप ने ही इस प्राणी को, जो मुश्किल से दस महीने का है, ऐसा अतुलनीय ज्ञान प्रदान किया है। पीड़ितों के वह रक्षक (आप स्वयं) अपने ही इस उपकार-कर्म (ज्ञान की इस भेंट) से प्रसन्न हों; क्योंकि उनके उपकारों का प्रतिदान हाथ जोड़ने (कृतज्ञतापूर्वक) के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? (श्लोक 18)

दूसरे प्रकार के देहधारी जीव (अर्थात् पक्षी, पशु आदि) केवल सहज-वृत्ति से अपने शरीर में अनुकूल तथा प्रतिकूल संवेदनाओं का अनुभव करते हैं। परन्तु मैं, आत्म-संयम (तथा अन्य आध्यात्मिक साधनाओं) करने में सक्षम मानव-शरीर से सम्पन्न होकर, उस परम प्राचीन पुरुष को, अपने बाहर तथा भीतर दोनों जगह, उसी पुरुष द्वारा प्रदत्त बुद्धि के बल पर देखता हूँ, जो मेरे अपने स्वयं के समान ही 'मैं' कहलाकर प्रकट है। (श्लोक 19) यद्यपि इस गर्भ में अनेक कष्टों से भरा जीवन जी रहा हूँ, हे प्रभु, मुझे इससे बाहर निकलकर बाहरी संसार के गड्ढे में उतरने की कोई इच्छा नहीं है; क्योंकि आपकी माया वहाँ जाने वाले जीव को अपने वश में कर लेती है, और माया के फलस्वरूप 'मैं' (शरीर के सन्दर्भ में) की मिथ्या

धारणा तथा उससे उत्पन्न जन्म-मृत्यु का चक्र प्रकट होता है। (श्लोक 20) अतः, अपने हृदय में भगवान् विष्णु के चरणों को स्थापित करके तथा मन की समस्त विचलितता को त्यागकर, मैं शीघ्र ही अपनी सबसे बड़ी मित्र, बुद्धि की सहायता से, इस सांसारिक अस्तित्व के सागर से स्वयं को उद्धृत कर लूँगा, ताकि गर्भाधान के अनेक चक्रों से युक्त यह विपत्ति मुझ पर पुनः न आए। (श्लोक 21)

यह असाधारण धार्मिक परिपक्वता की प्रार्थना है, जो अध्याय की अपनी कथा में, एक अजन्मे प्राणी से आती है। यह समर्पण से आरम्भ होकर (श्लोक 12), माया द्वारा बाँधे जाने तथा साथ ही, विडम्बनापूर्ण रीति से, व्यथित हृदय पर भगवान् की शुद्धता को प्रकट करने की सूक्ष्म समझ तक (श्लोक 13), शाश्वत आत्मा तथा शरीर एवं अहंकार के अस्थायी आवरणों के मध्य के स्पष्ट भेद तक (श्लोक 14), और अन्ततः इस सम्पूर्ण अंश की सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि तक बढ़ती है — कि केवल प्रयास नहीं, अपितु कृपा ही मुक्ति को सम्भव बनाती है (श्लोक 15) — और अन्त में एक संकल्प तक पहुँचती है: दुःख तथा स्मृति ने मिलकर जो स्पष्टता, चाहे संक्षिप्त काल के लिए ही सही, चखा दी है, उसे प्राप्त करके जीव प्रतिज्ञा करता है कि वह अपने “सबसे बड़े मित्र”, भगवान् को समर्पित बुद्धि का उपयोग सदा के लिए इस चक्र को समाप्त करने में करेगा (श्लोक 21)। और सबसे मार्मिक बात यह है कि श्लोक 20 में जीव कहता है कि वह जन्म भी नहीं लेना चाहता — वह इस दुःखमय, किन्तु स्पष्ट अवस्था में ही रहना पसन्द करेगा, बजाय इसके कि वह उस संसार में कदम रखे जहाँ माया द्वारा उत्पन्न एक पृथक्, देहधारी ‘मैं’ का भ्रम उसे वह सब कुछ भुला देगा जो उसने अभी-अभी स्मरण किया है।

अध्याय एक बात केवल संकेत से कहता है, जिसे स्पष्ट कह देना उचित है। गर्भस्थ जीव स्वयं ही, बिना किसी सहायता के, सही निदान तक पहुँच चुका है: वह तीनों गुणों के तथा अपनी ही विस्मृति के अधीन बँधा हुआ है (श्लोक 15)। किन्तु कपिल जीव को केवल निदान पर रुकने नहीं देते। वही श्लोक आग्रहपूर्वक कहता है कि कोई भी व्यक्तिगत प्रयास — कोई तप, कोई चतुराई, कोई इच्छाशक्ति — कृपा का स्थान नहीं ले सकता; जीव का अपना ही मोह उसे स्वयं को बचाने के अयोग्य बना देता है। यही कारण है कि भगवान् सम्पूर्ण गर्भ-यातना की अनुमति देते हैं — दण्ड के रूप में नहीं, अपितु उस एकमात्र निश्चित अवसर के रूप में, चाहे वह कितना ही संक्षिप्त क्यों न हो, जब एक पतित जीव को हर व्यवधान से मुक्त करके सीधे कृपा माँगने के लिए विवश किया जाता है। जन्म तब इस पुकार का उत्तर अपने ही ढंग से देता है — माँगी गई मुक्ति देकर नहीं, अपितु जीव को उस संसार में लौटाकर, जहाँ वह चाहे तो उस ज्ञान पर कार्य कर सकता है जिसे उसने कभी जाना था।



जुड़े हुए हाथों से, पीड़ा-भरे स्वर में, जीव मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है, क्योंकि उसने — अटूट स्मृति के इस संक्षिप्त काल के लिए — वह अतुलनीय ज्ञान प्राप्त कर लिया है जो केवल कृपा ही प्रदान कर सकती है (श्लोक 11-21)।

जन्म: ज्ञान लुप्त हो जाता है

कपिल अब पुनः कथावाचक के रूप में अपनी वाणी में लौटते हैं, और आगे जो वे वर्णन करते हैं वह अध्याय की केन्द्रीय विडम्बना तथा उसका गहनतम दुःख है: वही घटना — जन्म — जिसका जीव नौ महीनों से भय से प्रतीक्षा कर रहा था, वही घटना उस सब कुछ को भी मिटा देती है जो इस कठिन परीक्षा ने उसे सिखाया है।

भगवान् कपिल ने आगे कहा: जब गर्भ में ही ऐसा दृढ़ निश्चय कर चुका दस-महीने का जीव इस प्रकार भगवान् की स्तुति करता है, तब प्रसव-सहायक वायु उसे तुरन्त, उसका मुख नीचे की ओर मोड़कर, शिशु के जन्म हेतु आगे बढ़ा देती है। (श्लोक 22) वायु द्वारा अकस्मात् नीचे की ओर धकेला जाकर, शिशु सिर के बल, साँस-रहित तथा पीड़ा के कारण स्मृति-रहित होकर बड़ी कठिनाई से गर्भ से बाहर निकलता है। (श्लोक 23) रक्त तथा मूत्र के कुण्ड में पृथ्वी पर गिरकर, नवजात शिशु मल से उत्पन्न कृमि के समान तड़पता है, और (गर्भ में) अर्जित अपने ज्ञान को खोकर तथा उसके ठीक विपरीत अवस्था (शरीर से आत्म-तादात्म्य) को प्राप्त होकर ज़ोर से रोता है। (श्लोक 24)

जिस जीव ने अभी क्षण भर पहले एक ऋषि की स्पष्टता से प्रार्थना की थी, वह अब अपने द्वारा लिए गए संकल्प की कोई स्मृति न रखते हुए, संसार में एक असहाय, रोते हुए शिशु के रूप में आता है। श्रीमद्भागवत के अपने विवरण में, यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन उसी ज्ञान को भूलकर आरम्भ करता है, जिसे स्वयं गर्भ ने, असहनीय दुःख के द्वारा, कभी दृश्यमान होने पर बाध्य कर दिया था। प्रसव का आघात इस विस्मृति का आकस्मिक कारण नहीं है — कपिल के कथन में, यह इसका प्रत्यक्ष यान्त्रिक कारण है। इसका आशय किसी दुष्टता से नहीं है; यह केवल इसी प्रकार होता है कि एक जीव एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता है, और शोक अपनी ही शर्तों पर पुनः अनुसरण करता है।



प्रसव-वायु द्वारा नीचे की ओर धकेला जाकर, शिशु साँस-रहित तथा स्मृति-रहित होकर जन्म लेता है — गर्भ का वह कठिनाई से अर्जित ज्ञान संसार में आने के इसी आघात में खो जाता है (श्लोक 22-24)।

शैशव, बाल्यावस्था तथा इच्छा के नवीकृत चक्र

अध्याय अब मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं से तीव्रता से आगे बढ़ता है, और स्वर प्रार्थना की तीव्रता से एक कोमल, दुःखपूर्ण अवलोकन की ओर परिवर्तित हो जाता है:

दूसरों की मनोदशा न जानने वाले लोगों द्वारा पोषित किए जाने के कारण, उसे वह दिया जाता है जो अभीष्ट नहीं था; और शिशु उसे अस्वीकार करने में असमर्थ है। (श्लोक 25) पसीने से उत्पन्न प्राणियों से युक्त एक गन्दे बिस्तर पर लिटाया गया प्राणी अपने अंगों को खुजलाने में भी असमर्थ है, बैठने, खड़े होने अथवा स्वयं हिलने-डुलने की तो बात ही दूर है। (श्लोक 26) जिस प्रकार छोटे कृमि किसी बड़े कृमि को काटते हैं, उसी प्रकार मच्छर, डाँस, खटमल तथा अन्य प्राणी उस शिशु को, जो अत्यन्त कोमल त्वचा वाला तथा अपने (गर्भ में अर्जित) ज्ञान से रहित है, डंक मारते अथवा काटते हैं, जिससे वह कटु स्वर में रोता है। (श्लोक 27)

इस प्रकार शैशव तथा बाल्यावस्था के पीड़ादायक अनुभवों से गुज़रकर, मनुष्य (यौवन प्राप्त करने पर) अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने पर अज्ञानतावश क्रोधित हो उठता है तथा शोक से अभिभूत हो जाता है। (श्लोक 28) आयु के साथ उसका अहंकार तथा क्रोध बढ़ता जाता है, और वह इन्द्रिय-सुख का अभिलाषी अपने ही विनाश के लिए अन्य सुख-लोलुप मनुष्यों से शत्रुता कर बैठता है। (श्लोक 29) असत् वस्तुओं से चिपके हुए, भ्रमित बुद्धि वाला मूर्ख जीव पाँच तत्त्वों से बने शरीर को निरन्तर अपना स्वयं का स्वरूप अथवा अपनी वस्तु मानता रहता है। (श्लोक 30) इस शरीर के लिए — जो उसके लिए निरन्तर कष्ट का स्रोत है तथा अज्ञान एवं भाग्य के बन्धनों से बँधा हुआ सदा उसका अनुसरण करता है — वह विविध कर्म करता है, जिनसे बँधकर वह बार-बार जन्म-मृत्यु से गुज़रता है। (श्लोक 31) यदि यौन-सुख तथा स्वाद-तृप्ति की खोज में लगे कामुक लोगों के प्रभाव में आकर वह पुनः उनके मार्गों में आनन्दित होता है, तो वह पूर्व की भाँति पुनः नरक जाता है। (श्लोक 32)

स्त्री-पुरुष के मध्य आसक्ति का संकट

अध्याय की अन्तिम प्रमुख धारा उस बात को असाधारण सीधेपन से सम्बोधित करती है जिसे कपिल संसार की समस्त आसक्तियों में सबसे अधिक बन्धनकारी बताते हैं — स्त्री-पुरुष के मध्य वासना — और यह उसी संयमित, शिक्षाप्रद स्वर में करता है जो अध्याय ने कठिन विषय-वस्तु के प्रति सर्वत्र बनाए रखा है:

उन अशान्त, मूर्ख, आत्म-भ्रष्ट, दुष्ट, स्त्रियों के खिलौना बने पुरुषों की, जो सदा चंचल हैं तथा शरीर से अपना तादात्म्य स्थापित कर चुके हैं और अतः दया के पात्र हैं — जिनकी संगति से सत्यता, पवित्रता, करुणा, वाणी पर संयम, ज्ञान, समृद्धि, विनम्रता, सुयश, धैर्य, मन तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण तथा सौभाग्य नष्ट हो जाते हैं — कभी भी संगति नहीं करनी चाहिए। (श्लोक 33–34) किसी अन्य वस्तु के प्रति आसक्ति से उत्पन्न मोह तथा बन्धन उतने पूर्ण नहीं होते जितने स्त्रियों के प्रति आसक्ति से तथा स्त्री-लोलुप पुरुषों की संगति से उत्पन्न होते हैं। (श्लोक 35)

कपिल तब सृष्टि के आरम्भ से एक चौंका देने वाला दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं:

अपनी ही पुत्री (सरस्वती) को देखकर, ब्रह्मा (सृष्ट प्राणियों के स्वामी) उनकी सुन्दरता से मोहित हो गए और जब वह हिरणी का रूप धारण करके भागी, तो वे निर्लज्जतापूर्वक मृग का रूप धारण करके उसके पीछे दौड़े। (श्लोक 36) कश्यप आदि (जो मरीचि तथा ब्रह्मा के अन्य मानस-पुत्र ऋषियों की सन्तान थे) द्वारा उत्पन्न प्राणियों (देवता, मनुष्य आदि) में, फिर, ऐसा कौन पुरुष है, दिव्य ऋषि नारायण के अतिरिक्त, जिसका मन स्त्री-रूप में भगवान् की माया से विचलित न हो? (श्लोक 37) स्त्री-रूप में मेरी माया के प्रभाव को देखो, जो केवल अपनी भाँहों के खेल से चारों दिशाओं के विजेताओं को भी अपने पैरों तले रौंद देती है। (श्लोक 38)

गीता प्रेस अनुवाद इस कठिन तथा चौंका देने वाले सन्दर्भ को, बिना किसी शमन के, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत करता है जैसे स्रोत इसे बताता है: सृष्टि के रचयिता स्वयं भी, माया से उत्पन्न एक क्षण के भ्रम में, इस शक्ति से मुक्त नहीं थे। कपिल जो बात देवहूति को समझा रहे हैं वह किसी एक विशेष व्यक्ति की निन्दा नहीं है, अपितु यह प्रदर्शित करना है कि यह शक्ति किस विशालता की है — यदि स्वयं ब्रह्मा भी इससे मुक्त नहीं

थे, तो किसी साधारण जीव को स्वयं को इस विशेष माया-शक्ति से सुरक्षित नहीं मानना चाहिए। अध्याय समान सीधेपन के साथ आगे शिक्षा देता है:

योग की पराकाष्ठा (ईश्वर-साक्षात्कार के रूप में) तक पहुँचने का अभिलाषी अथवा मेरी आराधना से अपने वास्तविक स्वरूप को साकार कर चुका व्यक्ति युवा स्त्रियों की संगति कभी न करे, जिन्हें शास्त्र उसके लिए नरक का द्वार बताते हैं। (श्लोक 39) स्त्री भगवान् द्वारा सृजित माया की एक मूर्ति है और सेवा आदि के बहाने धीरे-धीरे पुरुष को अपने जाल में फँसा लेती है। अतः उसे अपने लिए मृत्यु-तुल्य मानना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे घास से ढँके मुँह वाला कुआँ किसी असावधान यात्री के लिए होता है। (श्लोक 40)

और इस शिक्षा को अपनी पूर्ण तथा आवश्यक समरूपता प्रदान करने वाले एक कदम में, कपिल तुरन्त इसी चेतावनी को उलटकर, समान सीधेपन के साथ उस जीव को सम्बोधित करते हैं जो स्त्री के रूप में जन्मा है:

इसी प्रकार जो जीव पूर्वजन्म में स्त्री के प्रति आसक्ति के परिणामस्वरूप स्त्री का रूप पाया है, वह मूर्खतावश पुरुष के रूप में प्रकट मेरी माया को अपने पति के रूप में देखता है, जो धन, सन्तान, घर आदि प्रदान करने वाला है। (श्लोक 41) अतः स्त्री को यह जान लेना चाहिए कि पति, सन्तान तथा घर आदि के रूप में — भाग्य द्वारा पूर्वनिर्धारित — यह माया उसके लिए साक्षात् मृत्यु है, ठीक वैसे ही जैसे शिकारी का गीत हिरण के लिए होता है। (श्लोक 42)

श्लोक 39-42 को एक साथ पढ़ने पर एक ही शिक्षा दोनों दिशाओं में लागू होती प्रतीत होती है: यहाँ न तो स्त्रियों की निन्दा की गई है और न पुरुषों की, अपितु किसी भी व्यक्ति को — चाहे वह कितना ही प्रिय क्यों न हो — अपने सुख, सुरक्षा अथवा धन का परम स्रोत मान लेने की भूल की निन्दा की गई है। कपिल कहते हैं कि यह भूल किसी जीव को उतनी ही दृढ़ता से बाँधती है जितनी अध्याय में पूर्व वर्णित अज्ञान का कोई अन्य रूप।



"स्त्री भगवान् द्वारा सृजित माया की एक मूर्ति है... उसे अपने लिए मृत्यु-तुल्य मानना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे घास से ढँके मुँह वाला कुआँ होता है" — और अगले श्लोक में यही शिक्षा उस जीव की ओर मोड़ी गई है जो स्त्री के रूप में जन्मा है तथा पति एवं गृहस्थी को इसी भ्रम से देखता है (श्लोक 40-42)।

जन्म तथा मृत्यु वास्तव में क्या हैं

अध्याय के समापन श्लोक इस सम्पूर्ण चर्चा को एक अधिक विशुद्ध दार्शनिक स्तर पर उठा देते हैं, देवहूति को — तथा तब से हर पाठक को — इस बात की स्पष्ट परिभाषा प्रदान करते हुए कि जन्म तथा मृत्यु वास्तव में किससे मिलकर बने हैं:

सूक्ष्म शरीर के साथ, जिसे मिथ्या रूप से जीव का स्वयं का स्वरूप माना जाता है, एक लोक से दूसरे लोक में जाते हुए, मानव-जीव अपने पूर्वजन्मों में किए गए कर्मों का फल भोगता रहता है तथा साथ ही निरन्तर नए कर्म भी करता रहता है, इस प्रकार भविष्य के जन्मों का मार्ग प्रशस्त करता है। (श्लोक 43) सूक्ष्म शरीर तथा उसका साथी — स्थूल शरीर — दोनों मिलकर उस मनो-भौतिक संगठन का निर्माण करते हैं, जो स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों, दस इन्द्रियों तथा मन से गठित है। जब यह संगठन समग्र रूप में कार्य करना बन्द कर देता है, तो उसे जीव की मृत्यु कहा जाता है; और जब यह समग्र रूप में कार्य करना आरम्भ करता है, तो उसे उसका जन्म कहा जाता है। (श्लोक 44)

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।

तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥ ४४ ॥

jīvo hy asyānugo deho bhūteन्द्रिया-mano-mayaḥ tan-nirodho 'sya maraṇam āvirbhāvas tu sambhavaḥ

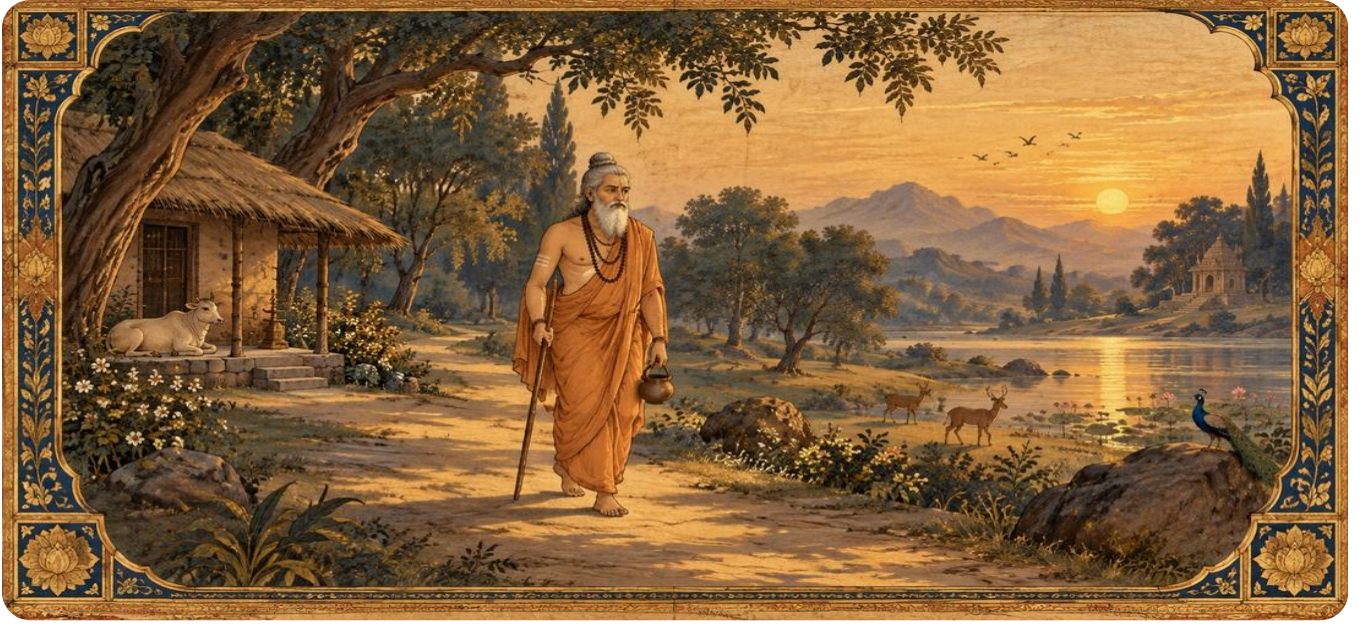
अर्थ: कपिल अब देवहूति को केवल विवरण नहीं, अपितु एक कार्यशील परिभाषा देते हैं: सामान्य अनुभव का 'जीव' वास्तव में मन, इन्द्रियों तथा शरीर के इसी सूक्ष्म-स्थूल संयोग का एक साथ कार्य करना है। जिसे मृत्यु कहा जाता है वह केवल इस संयोग का रुक जाना है; जिसे जन्म कहा जाता है वह केवल इसी संयोग का पुनः आरम्भ होना है। इनमें से कोई भी घटना आत्मा को स्पर्श नहीं करती, जो न कभी बनाई जाती है और न कभी नष्ट होती है। (स्कन्ध 3, अध्याय 31, श्लोक 44)

कपिल फिर इस अमूर्त परिभाषा को ठोस बनाने हेतु एक सुस्मरणीय दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं:

जिस प्रकार जब आँखें रंग आदि देखने की क्षमता खो देती हैं, उसी क्षण दृष्टि की इन्द्रिय भी निष्क्रिय हो जाती है और दोनों (आँख तथा दृष्टि-इन्द्रिय) का द्रष्टा जीव भी अपनी देखने की शक्ति खो देता है, उसी प्रकार जब स्थूल शरीर (जहाँ विषयों की अनुभूति होती है) उन्हें अनुभव करने में असमर्थ हो जाता है, तो उसे मृत्यु कहा जाता है (क्योंकि जब स्थूल शरीर कार्य करना बन्द कर देता है, तो सूक्ष्म शरीर भी कार्य करने के लिए वहाँ नहीं रह जाता); और जब कोई स्थूल शरीर को अपना स्वयं का स्वरूप मानने लगता है, तो उसे जन्म कहा जाता है। (श्लोक 45–46)

अतः, मृत्यु को न तो भय की दृष्टि से देखना चाहिए, न जीवन में कृपणता का सहारा लेना चाहिए, न ही मोह के वशीभूत होना चाहिए। जीव के वास्तविक स्वरूप को समझकर, मनुष्य को इस संसार में आसक्ति-रहित तथा दृढ़-संकल्प होकर विचरण करना चाहिए। (श्लोक 47) साथ ही, उसे सम्यक् दृष्टि से युक्त तथा योग एवं वैराग्य से सुदृढ़ अपनी बुद्धि के माध्यम से अपने शरीर को इस मायामय संसार को सौंप देना चाहिए, तथा निर्लिप्त होकर विचरण करना चाहिए। (श्लोक 48)

अध्याय की पुष्पिका इस प्रवचन को समाप्त करती है: “इस प्रकार ‘जीव की नियति’ नामक एकत्रिंश अध्याय समाप्त होता है, जो ‘भगवान् कपिल की कथा’ का अंश है, महान् तथा गौरवशाली भागवत-पुराण के तृतीय स्कन्ध में, जिसे परमहंस-संहिता के नाम से भी जाना जाता है।”



"मनुष्य को न तो मृत्यु को भय की दृष्टि से देखना चाहिए, न जीवन में कृपणता का सहारा लेना चाहिए, न ही मोह के वशीभूत होना चाहिए... उसे आसक्ति-रहित तथा दृढ़-संकल्प होकर संसार में विचरण करना चाहिए" — अध्याय का समापन उपदेश, इसके व्यावहारिक ज्ञान के अन्तिम शब्द के रूप में प्रस्तुत (श्लोक 47-48)।

चिन्तन: वह ज्ञान जिसे भूलकर हम सब जन्म लेते हैं

अध्याय 31 अपनी शान्त रीति से सम्पूर्ण कपिल-गीता के सर्वाधिक आशाजनक अध्यायों में से एक है, यद्यपि इसका आरम्भिक अर्ध भाग भी इसके सर्वाधिक निष्कपट शारीरिक अध्यायों में से एक है। इसका गहनतम दावा यह नहीं है कि गर्भ भय का स्थान है — यद्यपि यह गर्भ के दुःखों का वर्णन बिना किसी शमन के करता है — अपितु यह है कि आज पृथ्वी पर चल रहा प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी क्षण यह प्रार्थना पहले ही कर चुका है। इन शब्दों को पढ़ने वाला प्रत्येक जीव कभी बद्ध पड़ा था, सैकड़ों जन्मों को पूर्ण स्पष्टता से स्मरण कर रहा था, और एक बार जुड़े हुए हाथों से यह संकल्प ले चुका था कि वह बुद्धि के इस उपहार का उपयोग सदा के लिए जन्म-मृत्यु के चक्र को समाप्त करने में करेगा। यह संकल्प कोई कल्पना नहीं थी; अध्याय आग्रह करता है कि यह वास्तव में हम सबके साथ घटित हुआ, और यह केवल जन्म के आघात के कारण ही भुला दिया गया — इच्छाशक्ति की किसी असफलता के कारण नहीं। इस दृष्टि से पढ़ने पर, अध्याय 31 आध्यात्मिक साधना के सम्पूर्ण उद्देश्य को पुनर्परिभाषित करता है: यह किसी सर्वथा नए ज्ञान का अर्जन नहीं है, अपितु उस ज्ञान की धीमी, धैर्यपूर्ण पुनर्प्राप्ति है जिसे प्रत्येक जीव पहले ही प्राप्त कर चुका है और चरम परिस्थिति में पहले ही उपयोग कर चुका है। अध्याय का समापन उपदेश — न तो मृत्यु से भय, न जीवन के प्रति आसक्ति, न मोह के वशीभूत होना, अपितु बुद्धि, योग तथा वैराग्य के साथ इस मायामय संसार में विचरण — अन्ततः केवल कपिल द्वारा अजन्मे जीव की अपनी विस्मृत प्रार्थना का उस शिक्षा में अनुवाद है जिसे शरीरधारी वयस्क मनुष्य वास्तव में उपयोग कर सकता है।

सन्दर्भ

- मूल स्रोत: श्रीमद्भागवत महापुराण (भागवत पुराण), गीता प्रेस, गोरखपुर — अंग्रेज़ी सम्पूर्ण संस्करण, तृतीय स्कन्ध, एकत्रिंश अध्याय, “मानव गर्भ की विकास-अवस्थाएँ” (पुष्पिका-शीर्षक: “जीव की नियति”)
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् — श्रीमद्भागवत महापुराण की एक अध्याय-दर-अध्याय भक्तिपूर्ण यात्रा
- आध्यात्मिक मार्गदर्शन में प्रस्तुत: पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-31-manav-garbh-ki-vikas-avasthayen.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

